

मुकदमों का विवरण

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम.

एस. सुब्बेगौड़ा

(2023 की आपराधिक अपील संख्या 1598) अगस्त 03, 2023

[अनिरुद्ध बोस और बेला एम. त्रिवेदी, जे. जे।] हेडनोट्स

विचार के लिए मुद्दे:

(i) क्या उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है। 482 सी. आर. पी. सी. का अधिकारी प्रत्यर्थी-अभियुक्त को उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त कर सकता था। 13(1)(ई) दंडनीय यू/एस। 13(2) उक्त अधिनियम के अनुसार, इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त ने दिनांकित ज्ञापन प्रस्तुत करके आरोपमुक्त करने के लिए अपने दूसरे आवेदन के लिए दबाव नहीं डाला था और इस तथ्य के बावजूद कि विशेष न्यायालय द्वारा दिनांक 1 पर आरोप तैयार करने के बाद, मुकदमा आगे बढ़ा था और अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 17 गवाहों से पूछताछ की थी?

((ii) क्या उच्च न्यायालय ने आपराधिक याचिका में यू/एस का नेतृत्व किया। 482 सी. आर. पी. सी. की धारा (4) सहपठित उप-धारा (3) में निहित अवरोधक को नजरअंदाज करते हुए, मंजूरी की वैधता के संबंध में विशेष न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निर्णय को उलट सकता है। 19 उक्त अधिनियम का?

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 -एस. 13 (1) (ई) और एस. 13(2) - आरोप तय किए गए- विचारण न्यायालय ने गवाहों की जांच की-उच्च न्यायालय ने आरोपी को बरी कर दिया-स्वामित्व:

आयोजित किया गया: मान लीजिए कि दूसरे आवेदन के लिए प्रत्यर्थी द्वारा 02.12.2014 पर ज्ञापन प्रस्तुत करके दबाव नहीं डाला गया था, जिसमें कहा गया था कि विचारण न्यायालय उसके खिलाफ आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ सकती है-इस प्रकार, उक्त ज्ञापन द्वारा, प्रत्यर्थी -अभियुक्त ने सरकार द्वारा मंजूरी देने में मंजूरी या त्रुटि की वैधता के संबंध में अपने तर्क के लिए विशेष रूप से दबाव नहीं डाला था, और उसने विशेष रूप से न्यायालय से आरोप तय करने के साथ आगे बढ़ने का अनुरोध किया था-उक्त ज्ञापन को ध्यान में रखते हुए, निचली विचारण न्यायालय ने आरोप तय किया, और अभियोजन पक्ष ने जांच की 20

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 11 एस सी आर।

अपने मामले के समर्थन में 17 गवाह-उस स्तर पर, प्रत्यर्थी ने तीसरा आवेदन प्रस्तुत किया जो अंतर्वर्ती आवेदन की प्रकृति में था और फिर से यू/एस के तहत आरोपमुक्त करने की मांग कर रहा था। 227 सी. आर. पी. सी. की इस आधार पर कि मंजूरी आदेश में कोई त्रुटि थी, सरकार यू/एस को मंजूरी देने में सक्षम नहीं थी। 19(1) उक्त अधिनियम का-उक्त आवेदन को निचली विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए जाने के बाद, उच्च न्यायालय यू/एस याचिका पर विचार नहीं कर सकता था और न ही करना चाहिए था। 482 सी. आर. पी. सी. की, जो पुनरीक्षण आवेदन की प्रकृति में थी, और धाराओं की उप-धारा (4) सहपठित उप-धारा (3) को ध्यान में रखते हुए विचारण विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निर्णयों को उलट देती है। 19 उक्त अधिनियम का। [पैरा 7]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 -धारा 19 (3)-विशेष न्यायाधीश ने निर्णय अभिलिखित किए-उच्च न्यायालय द्वारा उलट दिए गए निष्कर्ष-निम्नलिखित का स्वामित्व:

आयोजित किया गया: अभियोजन पक्ष द्वारा 17 गवाहों की जांच के बाद आरोपमुक्त करने की मांग करने वाले प्रत्यर्थी द्वारा दायर तीसरे आवेदन को खारिज करते हुए, विशेष न्यायाधीश द्वारा यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि सरकार द्वारा दी गई मंजूरी, जो एक उच्चतर प्राधिकारी थी, उचित और वैध थी-विशेष न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए ऐसे निर्णय, धारा की उप-धारा (3) में निहित विनिर्दिष्ट सी बार को देखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा उलट या परिवर्तित नहीं किए जा सकते थे और न ही किए जाने चाहिए थे। 19 और वह भी इस बारे में कोई राय दर्ज किए बिना कि न्याय की विफलता कैसे हुई। [पैरा 14]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988-मुकदमे के बीच निर्वहन की मांग करने वाला अंतर्वर्ती आवेदन-इसकी अक्षमता बनाए रखना -

आयोजित किया गया: मुकदमे के बीच में आरोपमुक्त करने की मांग करने वाला ऐसा अंतर्वर्ती आवेदन विचारणीय नहीं होगा-एक बार विशेष न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिए जाने और आरोपी के खिलाफ आरोप तय किए जाने के बाद, उक्त अधिनियम की धारा 19 (3) को देखते हुए मुकदमे पर न तो रोक लगाई जा सकती थी और न ही इसके बीच में रोक लगाई जा सकती थी-तत्काल मामले में, हालांकि मंजूरी की वैधता का मुद्दा पहले ही उठाया गया था, लेकिन उस पर दबाव नहीं डाला गया था-उस स्थिति में प्रतिवादी-अभियुक्त के लिए एकमात्र खुला चरण था कि मुकदमे में अंतिम दलीलों में उक्त मुद्दे को उठाया जाए। [पैरा 15]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 -धारा 19 (1)-मंजूरी की वैधता के संबंध में मुद्दा उठाने के चरण। 19(1):

आयोजित किया गया:कार्यवाहियों के वे चरण जिन पर कोई अभियुक्त मंजूरी की वैधता के संबंध में मुद्दा उठा सकता है, वह चरण होगा जब न्यायालय मंजूरी का संज्ञान लेगा, वह चरण जब न्यायालय द्वारा आरोप तैयार किया जाना है या उस स्तर पर जब मुकदमा पूरा हो जाता है यानी मुकदमे में अंतिम दलीलों के स्तर पर-इस तरह के मुद्दे को निश्चित रूप से न्यायालय के समक्ष अपील, संशोधन या स्वीकारोक्ति में उठाया जा सकता है, हालांकि ऐसे न्यायालय की शक्तियां उक्त अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (3) और उप-धारा (4) के अधीन होंगी। [पैरा 10]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 -एस. 19 (3) और (4)-का संयुक्त पठन:

आयोजित किया गया:धारा 19 की उप-धारा (3) और (4) के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट होता है कि संहिता में कुछ भी निहित होने के बावजूद, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश को न्यायालय द्वारा उप-धारा (1) के तहत आवश्यक मंजूरी की अनुपस्थिति या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर अपील, स्वीकारोक्ति या संशोधन में उलट या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि न्यायालय की राय में, वास्तव में न्याय की विफलता का कारण नहीं बनता है।[पैरा 11]

शहरों और अन्य संदर्भों की सूची

नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2015) 14 एस. सी. सी 186:[2015] 8 एससीआर 685; एम. पी. बनाम राज्यभुराजी और अन्य (2001) 7 एस. सी. सी. 679:[2001] 2 पूरक।एस. सी. आर. 128-पर निर्भर।

अन्य मामलों के विवरणों में आयातित आदेश और आवेदन शामिल हैं

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय:2023 की आपराधिक अपील संख्या 1598।

2018 के सी. आर. एल. पी. सं. 4463 में बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय के दिनांकित 16.08.2018 के निर्णय और आदेश से।

रूप:

शुभ्रांशु पाधी, सुश्री राजेश्वर शंकर, नीरोप सुकृति, जय निरुपमा, अधिवक्तागण अपीलार्थी के लिए।

एच. एन. शशिधर, वरिष्ठ अधिवक्ता, देवमशु बहल, बालाजी श्रीनिवासन, अधिवक्तागण प्रत्यर्थी के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का निर्णय/आदेश

बेला एम. त्रिवेदी, जे.

1. अपीलार्थी -कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस ने तत्काल अपील के माध्यम सहपठित 2018 की आपराधिक याचिका संख्या 4463 में बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 1 के फैसले और आदेश पर हमला किया है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी (मूल याचिकाकर्ता-अभियुक्त) को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके बाद उक्त अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 13 (1) (ई) के तहत आरोपित अपराधों सहपठित मुक्त करके उक्त याचिका को इस आधार पर अनुमति दी है कि सरकार द्वारा प्रत्यर्थी - अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए दी गई मंजूरी अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना थी।

2. प्रत्यर्थी 1983 से 2007 की अवधि के दौरान कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति और जल निकासी बोर्ड, मांड्या मंडल, मांड्या में एक कार्यकारी अभियंता के रूप में काम कर रहा था। तत्कालीन पुलिस उपाधीक्षक, बेंगलुरु ग्रामीण प्रभाग, कर्नाटक लोकायुक्ता, बेंगलुरु द्वारा प्रस्तुत स्रोत रिपोर्ट दिनांक 17.12.2007 के आधार पर, 2007 का अपराध संख्या 22 (जिसे बाद में 2008 का अपराध संख्या 62 के रूप में गिना गया) प्रत्यर्थी के खिलाफ उक्त अधिनियम की धारा 13 (1) (ई) सहपठित धारा 13 (2) के तहत अपराध के लिए दर्ज किया गया। यह आरोप लगाया गया था कि प्रत्यर्थी -अभियुक्त ने एक कार्यकारी अभियंता के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान आय के अपने ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक संपत्ति अर्जित की थी। जाँच पूरा होने पर, जाँच अधिकारी ने उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) में आवश्यकतानुसार प्रत्यर्थी पर मुकदमा चलाने की मंजूरी के लिए राज्य सरकार को कागजात भेजे थे। कर्नाटक सरकार ने अपने समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर सरकारी आदेश दिनांक 13.09.2010 जारी करके आवश्यक मंजूरी दी थी। इसके बाद बेंगलुरु ग्रामीण जिले के प्रधान जिला और सत्र न्यायाधीश की न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया, जिसमें आरोप लगाया गया था कि प्रत्यर्थी ने एक लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग किया था, भ्रष्ट गतिविधियों में लिप्त था और आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति अर्जित की थी। उक्त मामला 2011 का विशेष मामला संख्या 488 के रूप में उक्त न्यायालय के समक्ष दर्ज किया गया था। 3. प्रतिवादी-अभियुक्त एफ. आई. ने 12.10.2011 पर सी. आर. पी. सी. की धारा 239 सहपठित धारा 227 के तहत एक आवेदन का नेतृत्व किया, जिसमें 23 से उसे आरोपमुक्त करने की मांग की गई।

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम एस. सुब्बेगौड़ा [बेला एम. त्रिवेदी, जे.] 24 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 11 एस. सी. आर.

अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क देते हुए कि न तो स्रोत रिपोर्ट की सामग्री और न ही अन्य दस्तावेजों में कोई गड़बड़ी है जैसा कि आरोप लगाया गया है, और यह कि उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत मंजूरी सरकार द्वारा बिना किसी समझदारी के जारी की गई थी। उक्त आवेदन को निचली विचारण न्यायालय ने 01.02.2013 पर एक विस्तृत आदेश पारित करके खारिज कर दिया। उक्त आदेश से व्यथित होने के कारण, प्रत्यर्थी ने आपराधिक पुनरीक्षण याचिका को 'नहीं' पसंद किया। उच्च न्यायालय के समक्ष 2013 का 287। उक्त याचिका का निपटारा उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 1 के आदेश के माध्यम से किया गया, जिसमें निचली

विचारण न्यायालय को निर्देश दिया गया था कि वह जांच के दौरान प्रत्यर्थी द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेजों पर विचार करे और अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप पत्र के साथ पेश किया जाए, जबकि दिनांक 2 के आदेश द्वारा आरोपित किए बिना आरोप तैयार किया जाए।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी -अभियुक्त ने पुनः निचली विचारण न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 239 के तहत एक आवेदन का नेतृत्व किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क देते हुए मामले से उसे बरी करने की मांग की गई कि सरकार द्वारा पारित मंजूरी आदेश में विवेक की कमी थी और इसे यंत्रवत रूप से दिया गया था और जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत सामग्री को दबा दिया था, जिसमें प्रश्न की अवधि के दौरान प्रत्यर्थी द्वारा अर्जित संपत्तियों, प्राप्त आय और खर्च के बारे में संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया गया था। उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी ने 02.12.2014 पर एक ज्ञापन जमा करके और उसमें यह कहते हुए कि न्यायालय उसके खिलाफ आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ सकता है, उक्त आवेदन के लिए दबाव नहीं डाला। उक्त ज्ञापन निम्नानुसार है -

“बैंगलोर में न्यायिक जिला और सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में **Spl.C.C. 11** का **No.488**

दोनों:

राज्य द्वारा लोकायुक्ता पुलिस, बैंगलोर ग्रामीण।

..... शिकायतकर्ता

और:

सुब्बेगौड़ा।

... आरोपित

आरोपी के स्वयं पर मेमो फिल्माया गया

उपरोक्त नामित अभियुक्त विनम्रता से प्रस्तुत करता है कि वह मामले में आरोपमुक्त करने के लिए 1973 की धारा 227 और 239 के तहत दायर आवेदन पर दबाव नहीं डालेगा। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि माननीय न्यायालय अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ सकता है।

02.12.2014

बैंगलोर।

एसडी/-

अभियुक्त के लिए अधिवक्ता।”

5. इसके बाद निचली विचारण न्यायालय ने 2011 के विशेष मामले संख्या 488 में उक्त अधिनियम की धारा 13 (1) (ई) के तहत दंडनीय आपराधिक दुराचार के लिए प्रतिवादी-आरोपी के खिलाफ आरोप तय किया। इसके बाद अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 17 गवाहों से पूछताछ की और मुकदमे के बीच प्रत्यर्थी -अभियुक्त ने फिर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत तीसरे आवेदन का नेतृत्व किया जिसमें इस आधार पर मामले से उसे बरी करने की मांग की गई कि प्रत्यर्थी कर्नाटक शहरी जल आपूर्ति और जल निकासी बोर्ड का कर्मचारी था और उसे केवल कर्नाटक सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1957 के नियम 10 को देखते हुए उक्त बोर्ड द्वारा हटाया जा सकता था। इसलिए राज्य सरकार के पास उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत प्रत्यर्थी पर मुकदमा चलाने की मंजूरी देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। निचली न्यायालय ने दिनांक 1 के आदेश के माध्यम से एक विस्तृत आदेश पारित करके उक्त आवेदन को खारिज कर दिया, जिसमें कहा गया था कि प्रत्यर्थी -आरोपी के नेतृत्व में मामले से आरोपमुक्त करने के लिए लगातार तीसरा आवेदन, जब 17 गवाहों का साक्ष्य दर्ज किया गया था और जब मंजूरी पर आधारित विवाद पहले ही न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, तो खारिज किया जा सकता था। पीड़ित प्रत्यर्थी ने आपराधिक याचिका को 'नहीं' बताया। उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत 2018 का 4463, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विवादित आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई।

6. पूर्व में बताए गए निर्विवाद तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं:

(i) क्या उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी-अभियुक्त को उक्त अधिनियम की धारा 13 (2) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त कर सकता था, इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त ने 25 तक आरोपमुक्त करने के लिए अपने दूसरे आवेदन के लिए दबाव नहीं डाला था।

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम एस. सुब्बेगौड़ा [बेला एम. त्रिवेदी, जे.] 26

आई. डी. 1 दिनांकित ज्ञापन प्रस्तुत करना और इस तथ्य के बावजूद कि आई. डी. 2 पर विशेष न्यायालय द्वारा आरोप तय करने के बाद, मुकदमा आगे बढ़ा और अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 17 गवाहों से पूछताछ की?

((ii) क्या उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आपराधिक याचिका में उक्त अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (4) सहपठित उप-धारा (3) में निहित बाधा की अनदेखी करते हुए मंजूरी की वैधता के संबंध में विशेष न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निर्णय को उलट सकता है?

7. जैसा कि पहले कहा गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत आरोपमुक्त करने की मांग करने वाले पहले आवेदन में सफल नहीं होने के बाद, जिसमें याची ने यह तर्क देते हुए मंजूरी का मुद्दा उठाया था कि सरकार द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत मंजूरी दी गई थी, प्रत्यर्थी -अभियुक्त ने अन्य बातों के साथ-साथ, यह तर्क देते हुए मंजूरी का मुद्दा उठाते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत अपने आरोपमुक्त करने की मांग करते हुए दूसरे आवेदन का नेतृत्व किया था कि मंजूरी आदेश सरकार द्वारा यांत्रिक रूप से पारित किया गया था और जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत सामग्री को दबा दिया था, जो उसके द्वारा अर्जित संपत्तियों के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण था। मान लीजिए, दूसरे आवेदन के लिए प्रत्यर्थी द्वारा 02.12.2014 पर ज्ञापन जमा करके दबाव नहीं डाला गया था, जिसमें कहा गया था कि न्यायालय उसके खिलाफ आरोप तय करने के लिए आगे बढ़ सकती है। इस प्रकार, उक्त ज्ञापन प्रस्तुत करके, प्रतिवादी-अभियुक्त ने सरकार द्वारा मंजूरी देने में मंजूरी या त्रुटि की वैधता के संबंध में अपने तर्क के लिए विशेष रूप से दबाव नहीं डाला था, और उसने विशेष रूप से न्यायालय से आरोप तय करने के साथ आगे बढ़ने का अनुरोध किया था। उक्त ज्ञापन पर विचार करते हुए, निचली विचारण न्यायालय ने आरोप तय किया, और अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 17 गवाहों से पूछताछ की। उस स्तर पर, प्रत्यर्थी ने तीसरा आवेदन प्रस्तुत किया जो अंतर्वर्ती आवेदन की प्रकृति का था और फिर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के तहत इस आधार पर आरोपमुक्त करने की मांग की कि मंजूरी आदेश में कोई त्रुटि थी, क्योंकि सरकार उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत मंजूरी देने में सक्षम नहीं थी। उक्त आवेदन को निचली विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए जाने के बाद, उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका पर विचार नहीं कर सकता था और न ही करना चाहिए था, जो पुनरीक्षण आवेदन की प्रकृति में थी, और इसके द्वारा दर्ज किए गए निर्णय को उलट दिया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 11 एस सी आर।

विचारण विचारण न्यायालय, उक्त अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (4) सहपठित उप-धारा (3) को ध्यान में रखते हुए।

8. तैयार संदर्भ के लिए, धारा 19 की उप-धारा (1), (3) और (4) के प्रासंगिक भाग को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“19. अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक है।—

(1) लोकपाल और लोकायुक्ता अधिनियम, 2013 (2014 का 1) में अन्यथा उपबंधित पूर्व मंजूरी के अलावा, कोई भी अदालत किसी लोक सेवक द्वारा धारा 7, 11, 13 और 15 के तहत न्यायालयनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगी—(क) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो नियोजित है, या जैसा भी मामला हो, संघ के अपराधों के संबंध में नियोजित कथित अपराध के समय था

और उस सरकार के केंद्र सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के अलावा उसके कार्यालय से हटाने योग्य नहीं है।

(ख) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो नियोजित है, या जैसा भी मामला हो, किसी राज्य के संबंध में नियोजित कथित कार्य के समय था और राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के अलावा अपने कार्यालय से हटाने योग्य नहीं है।

(ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे उसके कार्यालय से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी।

(2) —————

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में कुछ भी निहित होने के बावजूद, -

(क) उप-धारा (1) के तहत अपेक्षित मंजूरी की अनुपस्थिति या उसमें किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश को किसी न्यायालय द्वारा अपील, स्वीकारोक्ति या संशोधन में उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, न्याय की विफलता वास्तव में इसके कारण नहीं हुई है।

(ख) कोई भी न्यायालय मंजूरी में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के तहत कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी।

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम एस. सुब्बेगौड़ा [बेला एम. त्रिवेदी, जे.] 28

प्राधिकरण द्वारा दिया गया, जब तक कि यह संतुष्ट नहीं किया जाता है कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है; (ग) कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के तहत किसी अन्य आधार पर कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी और कोई भी न्यायालय किसी भी जांच, परीक्षण, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतर्वर्ती आदेश के संबंध में संशोधन की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगी।

(4) उप-धारा (3) के तहत यह निर्धारित करने में कि क्या इस तरह की मंजूरी की अनुपस्थिति या कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता न्याय की विफलता का कारण बनी है या इसके परिणामस्वरूप हुई है, न्यायालय को इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही में किसी भी प्रारंभिक चरण में उठाई जा सकती थी और होनी चाहिए थी। स्पष्टीकरण — इस धारा के प्रयोजनों के लिए -

(क) त्रुटि में मंजूरी देने के लिए प्राधिकरण की क्षमता शामिल है; (ख) अभियोजन के लिए आवश्यक मंजूरी में किसी भी आवश्यकता का संदर्भ शामिल है कि अभियोजन किसी विशिष्ट प्राधिकारी के कहने पर या किसी विशिष्ट व्यक्ति की मंजूरी या इसी तरह की किसी आवश्यकता के साथ होगा।”

9. इसी तरह का प्रावधान सी. आर. पी. सी. की धारा 465 में निहित है कि क्या दंड या सजा त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण प्रतिवर्ती है। यह नीचे लिखा है:-

“465. त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण प्रतिवर्ती होने पर वाक्य खोजना या प्राप्त करना।-

1. इसमें पहले निहित प्रावधानों के अधीन रहते हुए, सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी न्यायालय द्वारा पारित किसी भी अंतिम सजा या आदेश को अपील न्यायालय द्वारा उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा, शिकायत में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण पुनरीक्षण का आश्वासन, समन, वारंट, घोषणा, आदेश, निर्णय या परीक्षण से पहले या उसके दौरान या इस संहिता के तहत किसी भी जांच या अन्य कार्यवाही में अन्य कार्यवाही, या अभियोजन के लिए किसी भी मंजूरी में कोई त्रुटि, या अनियमितता जब तक कि उस न्यायालय की राय में, न्याय की विफलता वास्तव में इसके कारण नहीं हुई है।

2. यह निर्धारित करने में कि क्या इस संहिता के तहत किसी भी कार्यवाही में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता है, या किसी भी प्रक्रिया में कोई त्रुटि या अनियमितता है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 11 एस सी आर।

अभियोजन पक्ष के लिए मंजूरी ने न्याय की विफलता का कारण बना दिया है, न्यायालय को इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही के शुरुआती चरण में उठाई जा सकती थी और होनी चाहिए थी।”

10. उक्त अधिनियम की धारा 19 में निहित पूर्व-वर्णित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि कानून धारा 19 (1) के खंड (ए), (बी) और (सी) के संदर्भ में ऐसी मंजूरी देने के लिए सक्षम सरकार/प्राधिकरण की पूर्व मंजूरी के अलावा किसी लोक सेवक के खिलाफ न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने से मना करता है। यह भी कानून का अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव है कि इस तरह की मंजूरी की वैधता के संबंध में सवाल कार्यवाही के शुरुआती चरण में उठाया जाना चाहिए, हालांकि मुकदमे के बाद के चरण में भी उठाया जा सकता है। हमारी राय में, कार्यवाहियों के वे चरण जिन पर एक अभियुक्त मंजूरी की वैधता के संबंध में मुद्दा उठा सकता है, वह चरण होगा जब न्यायालय ऑफ-एनस का संज्ञान लेगा, वह चरण जब न्यायालय द्वारा आरोप तैयार किया जाना है या उस स्तर पर जब मुकदमा पूरा हो जाता है, यानी मुकदमे में अंतिम दलीलों के स्तर पर। बेशक, इस तरह के मुद्दे को न्यायालय के समक्ष अपील, संशोधन या आश्वासन में उठाया जा सकता है, हालांकि ऐसे न्यायालय की शक्तियां उक्त अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (3) और उप-धारा (4) के अधीन होंगी। यह भी ध्यान देने योग्य नहीं है कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाने की न्यायालय की क्षमता भी मंजूरी की वैधता के अस्तित्व पर निर्भर करेगी, और इसलिए मंजूरी की वैधता के मुद्दे को जल्द से जल्द उठाना हमेशा वांछनीय है। यह

नहीं कहा जा सकता है कि यदि मंजूरी अमान्य पाई जाती है, तो निचली विचारण न्यायालय आरोपी को आरोपमुक्त कर सकती है और पक्षों को उस स्तर पर भेज सकती है जहां सक्षम प्राधिकारी कानून के अनुसार अभियोजन के लिए नई मंजूरी दे सकता है।

11. धारा 19 की उप-धारा (3) और (4) के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट होता है कि संहिता में कुछ भी निहित होने के बावजूद, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश को न्यायालय द्वारा उप-धारा (1) के तहत आवश्यक मंजूरी की अनुपस्थिति या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर अपील, स्वीकारोक्ति या संशोधन में उलट या बदला नहीं जाएगा, जब तक कि न्यायालय की राय में, वास्तव में न्याय की विफलता का कारण नहीं बनता है। उप-धारा (4) में आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उप-धारा (3) के तहत यह निर्धारित करने में कि क्या मंजूरी की अनुपस्थिति, या कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता न्याय की विफलता का कारण बनी है, न्यायालय को इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही के पहले चरण में उठाई जा सकती थी और होनी चाहिए थी। उप-धारा (4) के स्पष्टीकरण में आगे यह प्रावधान किया गया है कि 29

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम एस. सुब्बेगौड़ा [बेला एम. त्रिवेदी, जे.] 30

धारा 19, त्रुटि के उद्देश्य में "मंजूरी देने के लिए प्राधिकरण की क्षमता" शामिल है। इस प्रकार, धारा 19 की उप-धारा (3) में प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट है कि उक्त उप-धारा का आवेदन अपील, स्वीकारोक्ति या संशोधन में न्यायालय के समक्ष की कार्यवाही के लिए है, न कि विशेष न्यायाधीश के समक्ष की कार्यवाही के लिए। उक्त उप-धारा (3) स्पष्ट रूप से न्यायालय को अपील, स्वीकार या संशोधन में, विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप करने से मना करती है कि मंजूरी खराब थी, सिवाय उन मामलों के जहां अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय यह मानती है कि न्याय की विफलता ऐसी अयोग्यता के कारण हुई थी।

12. नंजप्पा बनाम कर्नाटक राज्य 1 के मामले में इस न्यायालय ने

धारा 19 (1) की जटिलताओं के साथ-साथ उक्त अधिनियम की धारा 19 (3) और 19 (4) पर भी उचित रूप से विचार किया गया कि उक्त अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत दी गई मंजूरी की वैधता का सवाल किस स्तर पर उठाया जा सकता है, और उक्त अधिनियम की धारा 19 की उप-धारा (3) के तहत अपील, प्रत्यर्पण या संशोधन में न्यायालय की क्या शक्तियां हैं।

"22. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के तहत मंजूरी के महत्व के बारे में कानूनी स्थिति इस प्रकार संदेह को स्वीकार करने के लिए बहुत स्पष्ट है। कानून धारा 19 (1) के खंड (ए), (बी) और (सी) के संदर्भ में ऐसी मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के अलावा किसी लोक सेवक के खिलाफ न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने से मना करता है। इस तरह की मंजूरी की वैधता के बारे में सवाल कार्यवाही के किसी भी चरण में उठाया जा सकता है। अभियुक्त पर मुकदमा चलाने की न्यायालय की क्षमता एक वैध मंजूरी के अस्तित्व पर निर्भर करती है। यदि मंजूरी अमान्य पाई जाती है तो न्यायालय अभियुक्त को पक्षकारों को ऐसे स्तर पर

भेजकर आरोपमुक्त कर सकती है जहां सक्षम प्राधिकारी कानून के अनुसार अभियोजन के लिए नई मंजूरी दे सकता है। यदि निचली विचारण न्यायालय मंजूरी आदेश से जुड़ी अयोग्यता के बावजूद आगे बढ़ती है, तो उसे कानून की नजर में गैर-कानूनी माना जाएगा और ऐसे अभियोजन के लिए वैध मंजूरी देने पर उसी मामले के लिए दूसरे मुकदमे को मना नहीं करेगा।

23. यह कहने के बाद कि दो पहलू हैं जिन पर हमें तुरंत ध्यान देना चाहिए। प्रथम अधिनियम धारा 19 की उप-धारा (3) के प्रभाव से संबंधित है, जो एक गैर-अवरोधक खंड से शुरू होता है। इसी पहलू के लिए भी प्रासंगिक धारा 465 सी. आर. पी. सी. होगी जिसे हमने पहले निकाला है।

1 (2015) 14 एस. सी. सी 186

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 11 एस सी आर।

23.1. राज्य की ओर से एक बेहतर कारण के योग्य पर्याप्त दृढ़ता के साथ यह तर्क दिया गया कि धारा 19 (3) के संदर्भ में, किसी अभियुक्त के अभियोजन को मंजूरी देने वाले आदेश में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता का कोई परिणाम नहीं था, जब तक कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता नहीं थी। यह तर्क दिया गया था कि धारा 4 के स्पष्टीकरण के संदर्भ में, "त्रुटि में प्राधिकरण की मंजूरी देने की क्षमता शामिल है"। यह तर्क आकर्षक है, लेकिन हमारी राय में, इसकी अधिक जांच नहीं की जा सकती है।

23.2. धारा 19 की उप-धारा (3) को सावधानीपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि वही विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश को इस आधार पर उलटने या बदलने का निर्देश देता है कि मंजूरी आदेश एक त्रुटि, चूक या अनियमितता से पर्याप्त है, जब तक कि निश्चित रूप से उस न्यायालय की राय न हो जिसके समक्ष इस तरह के निर्णय, सजा या आदेश को अपील या संशोधन में चुनौती दी जाती है कि न्याय की विफलता ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण हुई है। उप-धारा (3), दूसरे शब्दों में, अपील, प्रत्यर्पण या पुनरीक्षण कार्यवाहियों में विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप को इस आधार पर प्रतिबंधित करती है कि मंजूरी खराब है और उन मामलों को छोड़कर जहां अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय यह मानता है कि न्याय की विफलता ऐसी अयोग्यता से हुई है। उल्लेखनीय बात यह है कि उप-धारा (3) का विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं है, जो अभियुक्त को आरोपमुक्त करने का आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है, यदि उसकी राय है कि अभियुक्त के अभियोजन को मंजूरी देने वाला एक वैध आदेश धारा 19 (1) के तहत आवश्यकतानुसार प्रस्तुत नहीं किया गया था। 23.3. उप-धारा (3), हमारी राय में, मंजूरी के आदेश में किसी भी दोष, चूक या अनियमितता के आधार पर विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को उलटने वाले उच्च न्यायालय के खिलाफ निषेध का प्रतिपादन करती है। यह एक विशेष न्यायाधीश को

कार्यवाही के किसी भी स्तर पर एक आदेश पारित करने से मना नहीं करता है जिसमें कहा गया है कि अभियोजन पक्ष इसे मंजूरी देने वाले वैध आदेश के अभाव में बनाए रखने योग्य नहीं है।

23.4. हमारी राय में, उप-धारा (3) में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है। यह, हमारी राय में, उप-धारा (4) में प्रयुक्त भाषा से भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट है, जिसके अनुसार अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय, यह जांच करते हुए कि क्या मंजूरी में त्रुटि, चूक या अनियमितता न्याय की किसी विफलता के कारण हुई थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए होगा कि क्या आपत्ति हो सकती है और होनी चाहिए।

कर्नाटक राज्य लोकायुक्ता पुलिस बनाम एस. सुब्बेगौड़ा [बेला एम. त्रिवेदी, जे.] 32

प्रारंभिक अवस्था में उठाया गया है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि उप-धारा 19 (3) और (4) के संयुक्त पठन से इस बात में कोई संदेह नहीं होता है कि उक्त प्रावधानों में मंजूरी के आदेश की वैधता या कार्यवाही की वैधता को चुनौती देने की परिकल्पना की गई है, जिसमें विशेष न्यायाधीश द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील या पुनरीक्षण में पारित आदेश, सजा या आदेश शामिल हैं, न कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाने वाले विशेष न्यायाधीश के समक्ष।

23.5. प्रावधान में अंतर्निहित तर्क स्पष्ट रूप से यह है कि यदि मुकदमा निष्कर्ष पर पहुंच गया है और इसके परिणामस्वरूप एक निर्णय या सजा हुई है, तो अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसमें केवल इसलिए हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि धारा 19 (1) के तहत अभियोजन को मंजूरी देने वाले आदेश में कुछ चूक, त्रुटि या अनियमितता थी। न्याय की विफलता, ऐसे मामलों में अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय क्या देखेगा। और यह जांच करते समय कि क्या ऐसी कोई विफलता वास्तव में हुई थी, संबंधित न्यायालय यह भी ध्यान रखेगा कि क्या मंजूरी में त्रुटि, चूक या अनियमितता को छूते हुए आपत्ति कार्यवाही के शुरुआती चरण में उठाई जा सकती थी या नहीं, जिसका अर्थ है कि क्या इसे अपील या संशोधन में आग्रह किए जाने के बजाय परीक्षण स्तर पर उठाया जा सकता था और किया जाना चाहिए था।”

13. एम. पी. बनाम राज्य में भुराजी और अन्य **2**, इस न्यायालय में एक था

सी. आर. पी. सी. की धारा 465 में निहित विभिन्न पहलुओं से निपटने का अवसर, विशेष रूप से इस अभिव्यक्ति से निपटने के लिए कि "वास्तव में न्याय की विफलता हुई है" जैसा कि उसमें निहित है। चूंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (3) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 (1) में निहित प्रावधान समान हैं, इसलिए उक्त निर्णय में की गई टिप्पणियां प्रासंगिक होंगी।

“14. हमें उपरोक्त संदर्भ में संहिता की धारा **465 (1)** की जांच करनी होगी। इसे नीचे निकाला गया है:

“465. (1) इसमें पहले निहित प्रावधानों के अधीन रहते हुए, सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी न्यायालय द्वारा पारित किसी भी निर्णय, सजा या आदेश को शिकायत, समन, वारंट, घोषणा,

आदेश, निर्णय या मुकदमे से पहले या उसके दौरान या इस संहिता के तहत किसी भी जांच या अन्य कार्यवाही में किसी भी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण अपील, प्रत्यर्पण या संशोधन न्यायालय द्वारा उलट या बदला नहीं जाएगा, या कोई त्रुटि नहीं होगी।

2 (2001) 7 एस. सी. सी. 679

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 11 एस सी आर।

अभियोजन पक्ष के लिए किसी भी मंजूरी में अनियमितता, जब तक कि उस न्यायालय की राय में, वास्तव में न्याय की विफलता नहीं हुई है।”15. धारा के पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि मुकदमे से पहले या उसके दौरान या किसी भी जांच में आयोजित कार्यवाही में त्रुटि, चूक या अनियमितता को विधायिका द्वारा आपराधिक न्यायालयों में संभावित घटनाओं के रूप में माना गया था। फिर भी विधायिका ने कार्यवाही को बंद करने या पूरी कार्यवाही को नए सिरे से दोहराने के निर्देश को अस्वीकार कर दिया। इसलिए, विधायिका ने एक निषेध लागू किया कि जब तक ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता "न्याय की विफलता" का कारण नहीं बनती है, तब तक उच्च न्यायालय केवल ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं करेगा।

16. इस तरह की त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण "न्याय की विफलता" का क्या अर्थ है? इस न्यायालय ने शमनसाहब एम. मुलतानी बनाम कर्नाटक राज्य [(2001) 2 एस. सी. सी. 577 में टिप्पणी की है: 2001 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 358] इस प्रकार: (एस. सी. सी. पी. 585, पैरा 23)

“23. हम अक्सर 'न्याय की विफलता' के बारे में सुनते हैं और अक्सर आपराधिक न्यायालय में प्रस्तुतिकरण को उक्त अभिव्यक्ति के साथ जोड़ा जाता है। शायद यह बहुत अधिक लचीली या आसान अभिव्यक्ति है जिसे किसी भी मामले की किसी भी स्थिति में माना जा सकता है। अभिव्यक्ति 'न्याय की विफलता' कभी-कभी एक व्युत्पत्ति संबंधी गिरगिट के रूप में दिखाई देती है (उपमा लॉर्ड डिप्लॉक से ली गई है)।

टाउन इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम विभाग पर्यावरण का [(1977) 1 सभी ई. आर. 813

: 1978 एसी 359: (1977) 2 डब्ल्यूएलआर 450 (एचएल)]। आपराधिक न्यायालय, विशेष रूप से उच्च न्यायालय को यह पता लगाने के लिए एक बारीकी से जांच करनी चाहिए कि क्या वास्तव में न्याय की विफलता थी या क्या यह केवल एक छद्म युग है।”14. तत्काल मामले में, विशेष न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी के नेतृत्व में आरोपमुक्त करने के लिए दूसरे आवेदन पर सुनवाई शुरू की, जिसके लिए उसके द्वारा दबाव नहीं डाला गया था। विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष द्वारा 17 गवाहों की जांच के बाद आरोपमुक्त करने की मांग करने वाले प्रत्यर्थी के नेतृत्व में तीसरे आवेदन को खारिज करते हुए विशेष रूप से कहा कि सरकार द्वारा दी गई मंजूरी, जो कर्नाटक जल आपूर्ति बोर्ड, जिसमें प्रत्यर्थी एक कर्मचारी था, के लिए एक उच्च अधिकारी थी,

15. वास्तव में, मुकदमे के बीच में आरोपमुक्त करने की मांग करने वाला ऐसा अंतर्वर्ती आवेदन भी विचारणीय नहीं होगा। एक बार जब विशेष न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिया गया और अभियुक्त

के खिलाफ आरोप तय किया गया, तो उक्त अधिनियम की धारा 19 (3) को देखते हुए मुकदमे पर न तो रोक लगाई जा सकती थी और न ही इसे बीच में ही रोका जा सकता था। तत्काल मामले में, हालांकि मंजूरी की वैधता का मुद्दा पहले उठाया गया था, लेकिन इसके लिए दबाव नहीं डाला गया था। उस स्थिति में प्रतिवादी-अभियुक्त के लिए एकमात्र खुला चरण कानून के अनुसार मुकदमे में अंतिम दलीलों में उक्त मुद्दे को उठाना था।

16. मामले के उस दृष्टिकोण में, उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश को अपास्त करना दिया जाता है। प्रत्यर्थी के लिए यह खुला रहेगा कि वह मुकदमे में बहस के अंतिम चरण में कानून के अनुसार मंजूरी की वैधता का मुद्दा उठाए, यदि वह ऐसा करना चाहता है। विशेष न्यायाधीश को निर्देश दिया जाता है कि वह कानून के अनुसार और यथासंभव शीघ्रता से मुकदमे को उस स्तर से आगे बढ़ाएं जहां यह रुका था।

17. तदनुसार अपील की अनुमति है।

द्वारा तैयार किए गए हेडनोट:

अपील की अनुमति दी गई।

अंकित ज्ञान